

विद्या भवन, बालिका विद्यापीठ, लखीसराय

वर्ग-दशम्

विषय-हिन्दी

॥अध्ययन-सामग्री ॥

बालगोबिन भगत (व्यक्ति चित्र)

आज इस पाठ के कुछ अंश कीतस्वीर भेजी

जा रही है, जिसे आप पढ़ें ।

शेष अगली कक्षा में ...



1055CH11

रामवृक्ष बेनीपुरी का जन्म बिहार के मुजफ्फरपुर जिले के बेनीपुर गाँव में सन् 1899 में हुआ। माता-पिता का निधन बचपन में ही हो जाने के कारण जीवन के आरंभिक वर्ष अभावों-कठिनाइयों और संघर्षों में बीते। दसवीं तक की शिक्षा प्राप्त करने के बाद वे सन् 1920 में राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन से सक्रिय रूप से जुड़ गए। कई बार जेल भी गए। उनका देहावसान सन् 1968 में हुआ।

15 वर्ष की अवस्था में बेनीपुरी जी की रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं में छपने लगीं। वे बेहद प्रतिभाशाली पत्रकार थे। उन्होंने अनेक दैनिक, साप्ताहिक एवं मासिक पत्र-पत्रिकाओं का संपादन किया, जिनमें तरुण भारत, किसान मित्र, बालक, युवक, योगी, जनता, जनवाणी और नयी धारा उल्लेखनीय हैं।

गद्य की विविध विधाओं में उनके लेखन को व्यापक प्रतिष्ठा मिली। उनका पूरा साहित्य बेनीपुरी रचनावली के आठ खंडों में प्रकाशित है। उनकी रचना-यात्रा के महत्त्वपूर्ण पड़ाव हैं-पतितों के देश में (उपन्यास); चिता के फूल (कहानी); अंबपाली (नाटक); माटी की मूरतें (रेखाचित्र); पैरों में पंख बाँधकर (यात्रा-वृत्तांत); ज़ंजीरें और दीवारें (संस्मरण) आदि। उनकी रचनाओं में स्वाधीनता की चेतना, मनुष्यता की चिंता और इतिहास की युगानुरूप व्याख्या है। विशिष्ट शैलीकार होने के कारण उन्हें 'कलम का जादूगर' कहा जाता है।



11

रामवृक्ष बेनीपुरी

2020-21

रामवृक्ष बेनीपुरी

बालगोबिन भगत रेखाचित्र के माध्यम से लेखक ने एक ऐसे विलक्षण चरित्र का उद्घाटन किया है जो मनुष्यता, लोक संस्कृति और सामूहिक चेतना का प्रतीक है। बेशर्भूषा या बाह्य अनुष्ठानों से कोई संन्यासी नहीं होता, संन्यास का आधार जीवन के मानवीय सरोकार होते हैं। बालगोबिन भगत इसी आधार पर लेखक को संन्यासी लगते हैं। यह पाठ सामाजिक रूढ़ियों पर भी प्रहार करता है। इस रेखाचित्र की एक विशेषता यह है कि बालगोबिन भगत के माध्यम से ग्रामीण जीवन की सजीव झाँकी देखने को मिलती है।



बालगोबिन भगत मँझोले कद के गोरे-चिट्टे आदमी थे। साठ से ऊपर के ही होंगे। बाल पक गए थे। लंबी दाढ़ी या जटाजूट तो नहीं रखते थे, किंतु हमेशा उनका चेहरा सफ़ेद बालों से ही जगमग किए रहता। कपड़े बिलकुल कम पहनते। कमर में एक लंगोटी-मात्र और सिर में कबीरपंथियों की-सी कनफटी टोपी। जब जाड़ा आता, एक काली कमली ऊपर से ओढ़े रहते। मस्तक पर हमेशा चमकता हुआ रामानंदी चंदन, जो नाक के एक छोर से ही, औरतों के टीके की तरह, शुरू होता। गले में तुलसी की जड़ों की एक बेडोल माला बाँधे रहते।

ऊपर की तसवीर से यह नहीं माना जाए कि बालगोबिन भगत साधु थे। नहीं, बिलकुल गृहस्थ! उनकी गृहिणी की तो मुझे याद नहीं, उनके बेटे और पतोहू को तो मैंने देखा था। थोड़ी खेतीबारी भी थी, एक अच्छा साफ़-सुथरा मकान भी था।

किंतु, खेतीबारी करते, परिवार रखते भी, बालगोबिन भगत साधु थे-साधु की सब परिभाषाओं में खरे उतरनेवाले। कबीर को 'साहब' मानते थे, उन्हीं के गीतों को गाते, उन्हीं के आदेशों पर चलते। कभी झूट नहीं बोलते, खरा व्यवहार रखते। किसी से भी दो-टूक बात करने में संकोच नहीं करते, न किसी से खामखाह झगड़ा मोल लेते। किसी की चीज नहीं छूते, न बिना पूछे व्यवहार में लाते। इस नियम को कभी-कभी इतनी बारीकी तक ले जाते कि लोगों को कुतूहल होता!-कभी वह दूसरे के खेत में शौच के लिए भी नहीं बैठते! वह गृहस्थ थे; लेकिन उनकी सब चीज 'साहब' की थी। जो कुछ खेत में पैदा होता, सिर पर लादकर पहले उसे साहब के दरबार में ले जाते-जो उनके घर से चार कोस दूर पर था-एक कबीरपंथी मठ से मतलब! वह दरबार में 'मंट' रूप रख लिया जाकर 'प्रसाद' रूप में जो उन्हें मिलता, उसे घर लाते और उसी से गुजर चलाते!

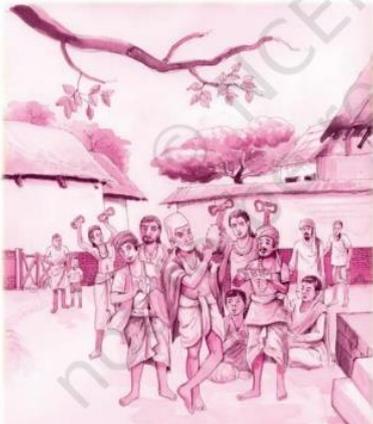
इन सबके ऊपर, मैं तो मुग्ध था उनके मधुर गान पर-जो सदा-सर्वदा ही सुनने को मिलते। कबीर के वे सीधे-सादे पद, जो उनके कंठ से निकलकर सजीव हो उठते।

आसाहू की रिमझिम है। समूचा गाँव खेतों में उतर पड़ा है। कहीं हल चल रहे हैं; कहीं रोपनी हो रही है। धान के पानी-भरे खेतों में बच्चे उछल रहे हैं। औरतें कलेवा लेकर मंड

रामवृक्ष बेनीपुरी

पर बैठी हैं। आसमान बादल से घिरा; धूप का नाम नहीं। ठंडी पुरवाई चल रही। ऐसे ही समय आपके कानों में एक स्वर-तरंग झंकार-सी कर उठी। यह क्या है-यह कौन है! यह पूछना न पड़ेगा। बालगोबिन भगत समूचा शरीर कीचड़ में लिथड़े, अपने खेत में रोपनी कर रहे हैं। उनकी अँगुली एक-एक धान के पौधे को, पंक्तिबद्ध, खेत में बिठा रही है। उनका कंठ एक-एक शब्द को संगीत के जीने पर चढ़ाकर कुछ को ऊपर, स्वर्ग की ओर भेज रहा है और कुछ को इस पृथ्वी की मिट्टी पर खड़े लोगों के कानों की ओर! बच्चे खेलते हुए झूम उठते हैं; मंड पर खड़ी औरतों के होंठ काँप उठते हैं, वे गुनगुनाने लगती हैं; हलवाहों के पैर ताल से उठने लगते हैं; रोपनी करनेवालों की अँगुलियाँ एक अजीब क्रम से चलने लगती हैं! बालगोबिन भगत का यह संगीत है या जादू!

भादो की वह अँधेरी अधरतिया। अभी, थोड़ी ही देर पहले मुसलधार वर्षा खत्म हुई है। बादलों की गरज, बिजली की तड़प में आपने कुछ नहीं सुना हो, किंतु अब झिल्ली की झंकार या दादुरों की टर्-टर् बालगोबिन भगत के संगीत को अपने कोलाहल में डुबो नहीं सकती। उनकी खँजड़ी डिमक-डिमक बज रही है और वे गा रहे हैं-"गोदी में पियवा, चमक उठे सखिया, चिहूँक उठे ना!"



हो, पिया तो गोद में ही है, किंतु वह समझती है, वह अकेली है, चमक उठती है, चिहूँक उठती है। उसी भरे-बादलों वाले भादो की आधी रात में उनका यह गाना अँधेरे में अकस्मात कौंध उठने वाली बिजली की तरह किसे न चौंका देता? अरे, अब सारा संसार निस्तब्धता में सोया है, बालगोबिन भगत का संगीत जाग रहा है, जगा रहा है!-तेरी गठरी में लगा चोर, मुसाफ़िर जाग ज़रा!

कातिक आया नहीं कि बालगोबिन भगत की प्रभातियाँ शुरू हुईं जो फ़ग़ान तक चला

विरहित

उठते। न जाने किस वक़्त जगकर वह नदी-स्नान को जाते-गाँव से दो मील दूर। वहाँ से नहा-धोकर लौटते और गाँव के बाहर ही, पोखरे के ऊँचे भिड़े पर, अपनी खँजड़ी लेकर जा बैठते और अपने गाने टेरेने लगते। मैं शुरू से ही देर तक सोनेवाला हूँ, किंतु, एक दिन, माप की उस पतल क्लिंटकितानेवाली धोर में भी, उनका संगीत मुझे पोखरे पर ले गया था। अभी आसमान के तारों के दीपक बुझे नहीं थे। हँ, पूरब में लोही लग गई थी जिसकी लालिमा को रूक़ ताग और बढ़ा रहा था। खेत, बगीचा, घर-सब पर कुहासा छा रहा था। साग वातावरण अजीब रहस्य से आवृत मालूम पड़ता था। उस रहस्यमय वातावरण में एक कुरा की चटाई पर पूरब मुँह, काली कमली ओढ़े, बालगोबिन भगत अपनी खँजड़ी लिए बैठे थे। उनके मुँह से शब्दों का लौला लगा था, उनकी औरतिलखी खँजड़ी पर लगातार चल रही थीं। गाते-गाते इतने मस्त हो जाते, इतने सुरूर में आते, उन्मत्त हो उठते कि मालूम होता, अब खड़े हो जाएँगे। कमली तो बार-बार मिर से नीचे सरक जाती। मैं जादू से कैपकैपा रहा था, किंतु तारे की छाँव में भी उनके मस्तक के श्रमबिंदु, जब-तब, चमक ही पड़ते।

गर्मियों में उनकी 'संज्ञा' कितनी उमसधरी श्रम को न झोतल करती। अपने घर के आँगन में आसन जमा बैठते। गाँव के उनके कुछ प्रेमी भी जुट जाते। खँजड़ियों और कलतालों को भरमार हो जाती। एक पद बालगोबिन भगत कह जाते, उनको प्रेमी-मंडली उसे दुहराती, तिहराती। धीरे-धीरे स्वर ऊँचा होने लगता-एक निश्चित ताल, एक निश्चित गति से। उस ताल-स्वर के चढ़ाव के साथ श्रोताओं के मन भी ऊपर उठने लगते। धीरे-धीरे मन तन पर हावी हो जाता। होते-होते, एक क्षण ऐसा आता कि बीच में खँजड़ी लिए बालगोबिन भगत नाच रहे हैं और उनके साथ ही सबके तन और मन नृत्यशील हो उठे हैं। साग आँगन नृत्य और संगीत से ओतप्रोत है।

बालगोबिन भगत की संगीत-साधना का चरम उल्काय उस दिन देखा गया जिस दिन उनका बेटा मरा। इकलौता बेटा था वह। कुछ सुस्त और बोध-सह था, किंतु इसी कारण बालगोबिन भगत उसे और भी मानते। उनकी समझ में ऐसे आदर्शियों पर ही क्यादा नजर रखनी चाहिए या प्यार करना चाहिए, क्योंकि वे निगरानी और मूहब्बत के रवाय हकदार होते हैं। बड़ी साध से उसको शरी कपड़े धो, पतौह बढी ही सुभग और सुशील मिली थी। घर की पूरी प्रबंधिका बनकर भगत को बहुत कुछ दुनियादारी से निवृत्त कर दिया था उसने। उनका बेटा बीमार है, इसकी खबर रखने की लीगा को कहीं तुरस्त। किंतु मीत तो अपनी और सबका ध्यान खँचकर ही रहती है। हमने सुना, बालगोबिन भगत का बेटा मर गया। कुतुहलवश उनके घर गया। देखकर दंग रह गया। बेटे को आँगन में एक चटाई पर लिटाकर एक सकेद कपड़े से ढाँक रखा है। वह कुछ फूल तो हमेशा ही रोपते रहते, उन फूलों में से कुछ तोड़कर उस पर बिछाए दिए हैं; फूल और तुलसीराल भी। सिरहाने एक चिरगा जला



रामवृष बेनीपुरी

रखा है। और, उसके सामने शमीन पर ही आसन जमाए गीत गाए चले जा रहे हैं। वही पुराना स्वर, वही पुरानी तल्लीनता। घर में पतौह रो रही है जिसे गाँव की स्त्रियाँ चुप करने की कोशिश कर रही हैं। किंतु, बालगोबिन भगत गाए जा रहे हैं। हँ, गाते-गाते कभी-कभी पतौह के नखदीक भी जाते और उसे रोने के बदले उल्लस मनाने को कहते। आलया परमात्मा के पास चली गई, विरहिनी अपने प्रेमी से जा मिली, भला इससे बहूकर आनंद को कौन बात? मैं कभी-कभी सोचता, यह पागल तो नहीं हो गए। किंतु नहीं, वह जो कुछ कह रहे थे उसमें उनका विश्वास बोल रहा था-वह चरम विश्वास जो हमेशा ही मृत्यु पर विजयी होता आया है।

बेटे के क्रिया-कर्म में तूल नहीं किया; पतौह से ही आग दिलाई उसको। किंतु ज्योंही श्राद्ध की अवधि पूरी हो गई, पतौह के भाई को बुलाकर उसके साथ कर दिया, यह आदेश देते हुए कि इसकी दुसरी शादी कर देना। इधर पतौह रो-रोकर कहती-मैं चली जाऊँगी तो बुढ़ापे में कौन आपके लिए भोजन बनाएगा, बीमार पड़े, तो कौन एक चुल्लू घानी भी देगा? मैं पैर पड़ती हूँ, मुझे अपने चरणों से अलग नहीं कोबिया। लेकिन भगत का निर्णय अटल था। तू जा, नहीं तो मैं ही इस घर को छोड़कर चल दूँगा-यह थी उनकी ओखिरी दलील और इस दलील के आगे बेचारी की क्या चलती?

बालगोबिन भगत की मीत उनकी अनुकूप हुई। वह हर वर्ष गंगा-स्नान करने जाते। स्नान पर उतनी आस्था नहीं रखते, जितनी संत-समागम और लोक-दर्शन पर। पैदल ही जाते। करीब तीस कोस पर गंगा थी। साधु को संबल लेने का क्या हक? और, गृहस्थ किसी से भिक्षा क्यों माँगे? अतः, घर से छाकर चलते, तो फिर घर पर ही लौटकर खाते। रस्ते भर खँजड़ी बजाते, गाते जहाँ प्यार लगती, घनी भी लेते। चार-पाँच दिन आने-जाने में लगते; किंतु इस लक्ष्य उपवास में भी वही भलती। अब बुढ़ापा आ गया था, किंतु टेक वही जवानीवाली। इस बार लीटे तो तबोयत कुछ सुस्त थी। खाने-पीने के बाद भी तबोयत नहीं सुधरी, थोड़ा बुखार आने लगा। किंतु नेम-इत तो छोड़नेवाले नहीं थे। वही दोनों जून गीत, स्नानध्यान, खेतीबारी देखता। दिन-दिन छोड़ने लगे। लोगों ने नहाने-धोने से मना किया, आराम करने को कहा। किंतु, हँसकर टाल देते रहे। उस दिन भी संध्य में गीत गाए, किंतु मालूम होता जैसे तागा टूट गया हो, माला का एक-एक घन बिछाए हुआ। धोर में लोगों ने गीत नहीं सुना, जाकर देखा तो बालगोबिन भगत नहीं रहे सिर्फ उनका पंजर पड़ा है।



